सरोज ने
सँभाला घर
डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा

सरोज ने सँभाला घर

डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा

साहित्य संगम

इलाहाबाद

दो शब्द

सुख-दुःख हर इन्सान की जिन्दगी में आते हैं। अधिकतर हिम्मत हारकर हालातों से समझौता कर लेते हैं। मगर कुछ अपनी हिम्मत, हौसले और मेहनत से दुःखों को जीत लेते हैं। वे अपनी सूझ-बूझ से परिवार को बड़ी-से-बड़ी मुसीबत से उबार लेते हैं।

प्रस्तुत कहानी की नायिका सरोज भी ऐसी ही हिम्मत वाली महिला है, जो गाँव में पली-बढ़ी और वहाँ के सद्विचारों को अपनाने वाली है। शहर में आकर बेरोजगारी और विपरीत विचारों से उसका परिवार मुश्किल में फँसता है। सरोज अपनी समझदारी धैर्य और मेहनत से परिवार को कठिन समय से उबारती है। साथ ही गाँवों से शहरों की ओर पलायन कर रहे परिवारों को भटकाव से बचने का रास्ता सुझाती है और उनके लिये प्रेरणा बनती है।

पुस्तक की सरल-सुबोध भाषा व रोचक शैली नवसाक्षरों के लिए ग्राह्य रहेगी। इसी विश्वास के साथ,

—अपर्णा शर्मा

I.S.B.N. 978-81-8097-168-6

प्रकाशक : साहित्य संगम, नया 100, लूकरगंज, इलाहाबाद
संस्करण : प्रथम, 2012
मुद्रक : एकेडेमी प्रेस, इलाहाबाद
मूल्य : तीस रुपये मात्र

सरोज ने सँभाला घर
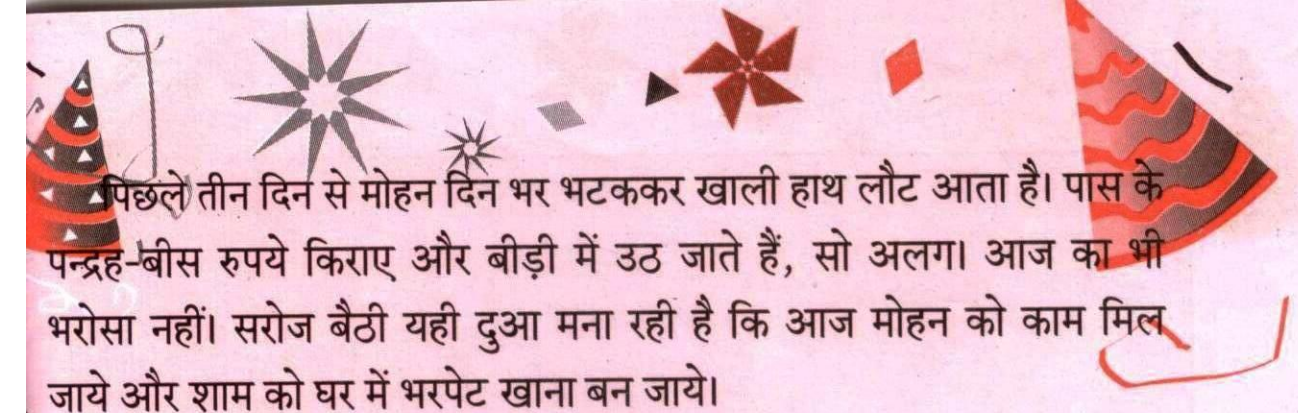
सरोज घर के दरवाजे पर उदास बैठी थी। उसकी दोनों बेटियाँ गीता व सीमा पास ही माँ की उदासी से अनजान खेल में मगन थीं। वे माँ को बार-बार पुकारतीं कि उनका फैसला कर दे। थोड़ी-थोड़ी देर में उनमें जीत को लेकर विवाद हो जाता था। सरोज कभी उन्हें डाँटकर तो कभी समझाकर शांत कर देती और जरा देर में फिर अपनी चिंता में डूब जाती।

आज चार दिन हुए घर में भरपेट रोटियाँ नहीं सिकीं हैं। आज तो मात्र आठ रोटियों का आटा निकला। सरोज ने बगैर मोहन को सही स्थिति बताए चार रोटियाँ बाँधकर उसके झोले में डाल दीं। बाकी चार में एक-एक लड़कियों को खिला दी। खुद एक लोटा पानी पी लिया। दोपहर में लड़कियों को ही बाकी रोटियाँ भी खिला दीं। सीमा के पूछने पर—"अम्मा तू रोटी क्यों नहीं खा रही है?" सरोज ने सिर दर्द का बहाना कर दिया।

मोहन यदि सही स्थिति जान जाता, तो बगैर रोटी लिए ही निकल जाता। फिर शाम तक निराहार भटकता। इस अनजान शहर में पानी भी मिलना कठिन है, भला उसे रोटी कौन खिलाता? भूखे पेट क्या मजदूरी होती है? आठ की जगह चार रोटी आधा पेट ही है। बस पानी पीने का सहारा हो गया समझो।

पिछले तीन दिन से मोहन दिन भर भटककर खाली हाथ लौट आता है। पास के पन्द्रह-बीस रुपये किराए और बीड़ी में उठ जाते हैं, सो अलग। आज का भी भरोसा नहीं। सरोज बैठी यही दुआ मना रही है कि आज मोहन को काम मिल जाये और शाम को घर में भरपेट खाना बन जाये।

करीब चार माह पहले मोहन का परिवार गाँव से इस महानगर में आया था। राजन नाम का आदमी गाँव में किसी का दोस्त बनकर पहुँचा था। उसने बाद में मोहन से दोस्ती गाँठ ली थी। वह इन्हें यहाँ लाया था। राजन ने मोहन पर शहर का ऐसा रंग चढ़ाया कि मोहन अपना घर, जानवर व सब कुछ बेचकर राजन के साथ हो लिया। सरोज लाख समझाती रही, मिन्नतें करती रही कि घर न बेचो। पहले जाकर वहाँ के रंग-ढंग देख लो। पर मोहन ने एक न सुनी। राजन के बहकावे में बाल-बच्चों सहित शहर को चल पड़ा। राजन ने मोहन को समझाया था—"गाँव में पढ़े-लिखे की कोई कदर नहीं है। तुम दसवीं पास हो तब भी गधों पर ईंटें ढो रहे हो। अनपढ़ होते तब भी यही करते। शहर में सैकड़ों काम हैं। सब्जी ठेली भी लगा लोगे, तो रोज के चार-पाँच सौ आराम से बन जाएंगे। जरा-सी हिम्मत करके ड्राइवरी सीख लोगे, तो टैम्पो पर हजारों रुपये रोज कमाओगे। मैं बैंक से कर्ज दिलवा दूँगा। शहर की बात ही अलग है। लड़कियाँ पढ़ जाएंगी। इन फटे-पुरानों से छुट्टी मिल जाएगी।"

राजन ने मोहन के घर और जानवरों के लिये फटाफट ग्राहक ढूँढ लिए। आधे-अधूरे पैसे मोहन के हाथ पर रख दिए। बाकी अपनी जेब में शहर तक के किराए और वहाँ घर दिलवाने के नाम पर रख लिए। किराए के नाम पर उन्हें बिना

टिकट गाड़ी में बैठाकर गायब हो गया। मोहन और सरोज बैठे राम-राम जपते रहे। टी. टी. ने आकर जब उन्हें डपटना शुरू किया, तो बेचारे हाथ-पैर जोड़ने और गिड़गिडाने लगे। पर गनीमत रही कि उसी समय राजन आ गया। उसने टी. टी. के कान में कुछ खुसुर-पुसुर की। टी. टी. शांत हो गया। राजन ने जेब से निकाल कर कुछ रुपये टी. टी. को दिए। फिर रास्ता आराम से कट गया।

घर के नाम पर राजन ने मोहन को यहाँ झोपड़-पट्टी में लाकर छोड़ दिया। चार खाट की जगह का ईंटों से घिरा यह आँगन और इतना ही टीन, पन्नी और ईंट-अध्धों से छाया कमरा। चूल्हा अपनी मर्जी से आँगन में रखो या कमरे में। शौच के लिये मुँह अँधेरे लाइन पार जाना।

गाँव में उनका अपना घर था। भले ही झोपड़ियाँ थीं, पर औरतों, मर्दों और जानवरों के लिए भरपूर जगह थी। झोपड़ी पर बारहों महीने लौकी, कद्दू, तोरई की बेलें छाई रहती थीं। खुद खाते और जरूरत पड़ने पर बेच भी लेते थे। जब तक सरोज के सास-ससुर जिंदा थे, घर में चाक चलता था। आवाँ लगता था। शादी, ब्याह और त्यौहारों में होश न आता। इनाम, खाना, कपड़ा सब भरपूर मिलता था। पर इस प्लास्टिक ने ऐसा बर्बाद किया कि लोग मिट्टी के बर्तनों को हीन भाव से देखने लगे। जंगलों से मिट्टी गायब हुई और बस्ती से खरीदार। अपना पुस्तैनी धंधा बर्बाद न होता, तो शहर की ललक ही न जगती। फिर भी काम तो चल ही रहा था। मोहन की नासमझी ने सब बर्बाद कर दिया।

सरोज जब अपने गाँव और घर को याद करती, तो यहाँ उसका दम घुटता।

अ
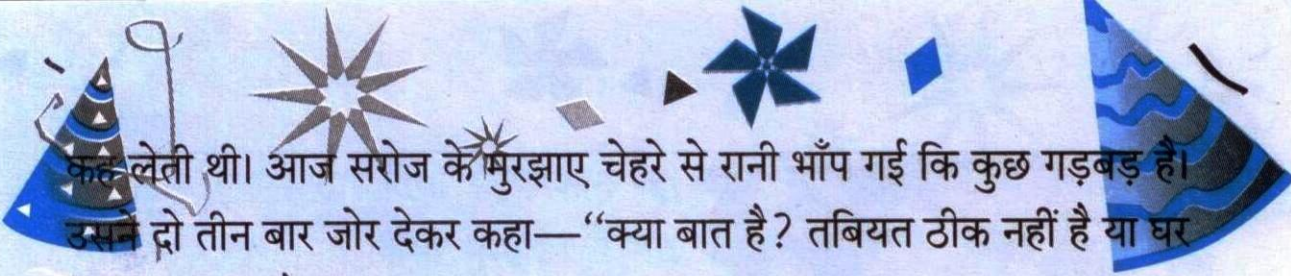
उसे नरक-सा लगता। अपने चारों गधों और गाय की याद सताती। बड़े से नीम के पेड़ के नीचे चारपाई बिछाकर बैठना, लड़कियों का पेड़ पर झूलना। अड़ोस-पड़ोस में उनका बेखटके खेलना, इस सबकी याद सरोज को कचोटती रहती। पर अब क्या हो सकता था। भगवान को जो मंजूर था वैसा हुआ। उनके ही कोई बुरे कर्म रहे होंगे, तब तो राजन उनकी जिन्दगी में आया। अब तो उसने आना भी छोड़ दिया है। जब तक मोहन के पास पैसे थे, तब तक वह आता रहता था। कभी साइकिल खरीदवाने और कभी नौकरी दिलवाने के बहाने पैसा लेता रहा। अब आकर क्या करेगा? जब कुछ बचा ही नहीं है। "खैर सबके भगवान हैं। वे यहाँ लाए हैं, तो कोई रास्ता भी देंगे।" सरोज गहरी साँस छोड़ते हुए बड़बड़ाई।

"अकेले-अकेले क्या बात हो रही है? कुछ, मैं भी सुनूँ।" रानी की आवाज सुनकर सरोज चौंकी। अपनी सुध में उसे पता ही नहीं चला कि रानी कब उसकी चारपाई के पास आ गई।

रानी सरोज की हम उम्र थी। बगल की झोपड़ी में रहती थी। उसका पति एक दुकान पर काम करता था। वह खुद घरों में चौका बर्तन करती थी। कोई बच्चा न होने से खर्च कम था। खूब सज-सँवर कर रहती थी। मोहन की लड़कियों को खाने का सामान देती रहती थी। बोलने में तेज थी। पर सरोज से दोस्ती हो गई थी। फुर्सत पाते ही उसके पास आ जाती थी। यद्यपि मोहन उसे अधिक पसन्द नहीं करता था। पर सरोज सोचती परदेश में कोई तो है, जो सीधे मुँह बात करे, वरना यहाँ तो लोग दूर से कन्नी काटते हैं। वह रानी से अपने मन की थोड़ी बहुत बात

कह लेती थी। आज सरोज के मुरझाए चेहरे से रानी भाँप गई कि कुछ गड़बड़ है। उसने दो तीन बार जोर देकर कहा—"क्या बात है? तबियत ठीक नहीं है या घर में झगड़ा हुआ है?"

शुरू में तो सरोज टालती रही। फिर उसके मुँह से निकल ही गया—"घर में न आटा है, न पैसे। चार दिन से कोई काम नहीं मिला।"

रानी बोली—"यहाँ कोई किसी को बैठाकर नहीं खिलाता। अपनी मेहनत खुद करनी पड़ती है। कितनी बार कहा है, मेरे साथ चल। दो-चार घरों का काम पकड़ ले। रोज-रोज के फाँके तो न हों।"

सरोज चुप रही। क्या कहें? वह तो काम कर ले पर मोहन को पसन्द नहीं।

रानी ने फिर समझाया—"यहाँ सब ऊँचे-ऊँचे सपने लेकर आते हैं। पर पेट भरने का साधन मिल जाए, तो बहुत समझो।"

सरोज बोली—"कल पूछकर बताऊँगी।" तभी मोहन आ गया और रानी उठकर चली गई। आज मोहन को कहीं आधे दिन की मजदूरी मिल गई थी। वह थोड़ा आटा खरीद लाया था। बाकी पैसे अगले दिन के खर्च के लिए बचा लिए थे। अभी काम का कोई भरोसा नहीं था।

सरोज ने रोटी सेकीं। सबने पेट भर खाया और सो गए। सुबह जब मोहन काम की तलाश में जाने लगा, तो सरोज ने डरते-डरते कहा—"मैं सामने बिल्डिग में कोई काम ढूँढ़ लूँ।"

विद्यालय

मोहन पिछले चार दिनों से परेशान था। आगे भी कोई ठिकाना नहीं। धीरे से बोला देख लेना। किसी मुसीबत में मत फँसना।"

"मुसीबत में तो फँस ही गए हैं। अपने घर थे, तो रूखी-सूखी खा ही रहे थे। यहाँ तो फाँके पर नौबत आ गई है।" सरोज ने मन-ही-मन कहा। उसने काम का इरादा पक्का कर लिया। रानी ने दो दिन में ही उसके लिए एक घर का काम तय कर दिया। सरोज काम पर जाने लगी। घर की तो उसे परवाह नहीं थी। किसी के चुराने लायक कुछ था ही नहीं। चिन्ता थी तो लड़कियों की। वह उन्हें खूब समझा देती कि जब तक वह लौटकर न आए, वे अपने घर से न कहीं जाएँ, न दरवाजा खोले। सरोज ने रानी से कुछ पैसे उधार लिए और आटे-नमक का इंतजाम कर लिया। महीना पूरा हुआ। सरोज को पैसे मिले। उसने सबसे पहले रानी का उधार चुकाया। फिर महीने भर का राशन खरीद लाई। ईंधन भी लेना पड़ा। शहर आकर यह एक और नई समस्या जुड़ गई थी। गाँव में इसके लिए कभी सोचना नहीं पड़ा। घर में ही सब मिल जाता था। सरोज ने एक के बाद एक चार-पाँच घरों का काम पकड़ लिया। घर में जरूरत-भर का पैसा आने लगा। घर के काम में अब मोहन और लड़कियाँ उसकी मदद कर देते। वह काम पर समय से जाती। मन लगाकर काम करती। इससे उसे कपड़ा, खाना और दूसरे सामान भी मिल जाते। रानी उसकी भरपूर मदद करती। वह भी जरूरत पड़ने पर उसके काम आती।

गर्मी बीतीं स्कूलों में दाखिले शुरू हुए। बस्ती के ढेरों बच्चे स्कूल जाने लगे। जो अभी तक दिन भर पतंग उड़ाते या कंचे खेलते-फिरते थे। सब स्कूल जाते दिखने लगे। एक दिन बस्ती में आकर बहन जी ने सरोज को भी

समझाया—"अपनी लड़कियों का नाम स्कूल में लिखवा दो।" पहले वह डरी। पर अगले दिन हिम्मत कर और मोहन की सहमति लेकर गीता, सीमा का दाखिला करा दिया।

बच्चों को स्कूल से कपड़ा, बस्ता और किताबें मिलीं। बस्ती के अधिकतर बच्चे सामान लेकर अपने पुराने ढर्रे पर लौट आए। सरोज लड़कियों को बराबर स्कूल भेजती रही। वह उन्हें समय से जगाती, तैयार करती, खाना देती और पढ़ने भेजती। बड़ी ने गाँव के स्कूल में दो क्लास पास कर ली थी। उसने तीसरी से और छोटी ने 'अ' 'आ' से पढ़ना शुरू किया। बस्ती के दूसरे बच्चे उम्र में बढ़ते रहे पर क्लास में नहीं। सरोज की बेटियाँ साल-दर-साल क्लास पास करती रहीं। सुबह को मोहन उन्हें पढ़ाता। शाम को सरोज किताब कापी देख लेती कि आज स्कूल में कुछ पढ़ाई हुई या नहीं।

सरोज के काम पर जाने से उसकी गृहस्थी की गाड़ी पटरी पर चलने लगी। परन्तु अभी भी बीमारी, त्यौहारों और कपड़ों की खरीद के लिये उसे उधार लेना पड़ता। रानी से तो पैसे मिल जाते। परन्तु घरों से उधार माँगने में बहुत बार किचकिच हो जाती। कोई काम छुड़ा देने की धमकी देता। कोई अतिरिक्त काम करवाता। विमला भाभी तो पैसे के नाम पर सदा उपदेश ही देती। अक्सर कहती—"लड़कियों को काम सिखा। अकेले कैसे पूरा घर पालेगी?"

उन्होंने सरोज को बहुत बार समझाने का प्रयास किया कि पढ़-लिखकर कोई बादशाही हाथ नहीं आती है। कितने पढ़े-लिखे सड़कों पर मारे-मारे फिरते हैं। बच्चा जितनी जल्दी कमाने खाने लायक हो जाये, वही ठीक है।" सरोज सब चुप

हिन्दी
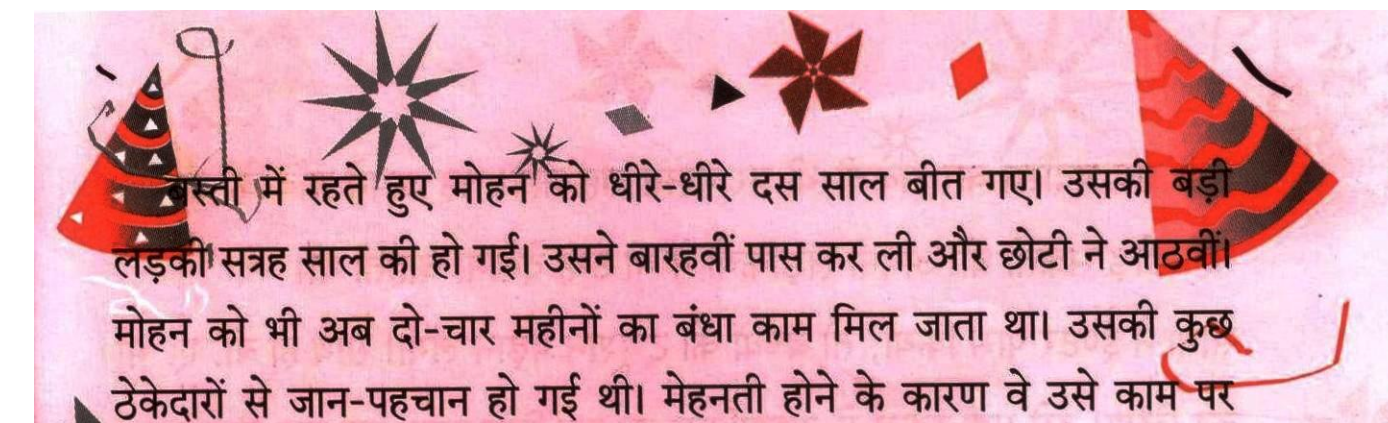
सुनती रहती। कोई जवाब न देती।

एक दिन सरोज की बेटियाँ स्कूल से लौटीं। सीमा ने सिर में दर्द की शिकायत की। उसका बदन भी थोड़ा गरम था। शाम तक उसे तेज बुखार हो गया और सुबह होने तक बड़ी को भी मौसमी बुखार ने घेर लिया। घर में पैसे नहीं थे। दो घरों से पिछले महीने ही उधार लिया था। रानी कहीं रिश्तेदारी में गई हुई थी। सरोज विमला भाभी के यहाँ पैसे माँगने नहीं चाहती थी। पर लड़कियों को अस्पताल ले जाना जरूरी था। अत: विमला भाभी से पैसा माँगने के अलावा सरोज के पास और कोई चारा नहीं था। विमला भाभी का स्वभाव आज कुछ नरम था। उन्होंने सरोज को उपदेश तो दिया। पर साथ ही पैसे भी। बोली—"तुझे कितनी बार समझाया बार-बार उधार माँगने से गृहस्थ का हिसाब गड़बड़ा जाता है। लड़कियों को काम पर लगा। पढ़कर कहीं मैडम नहीं हो जाएंगी।" सरोज सुनकर चुप घर आ गई। पर बात उसके दिल में लग गई—"मेरी बेटियाँ मैडम क्यों नहीं हो जाएगीं? मन लगाकर पढ़ेगी तो कौन-सा काम मुश्किल है?" उसी दिन से सरोज ने बेटियों को मैडम बनने को प्रेरित करना शुरू कर दिया।

गीता समझदार थी। मन लगाकर पढ़ती थी। परन्तु संकोची स्वभाव के कारण अपनी बात कहने में शर्माती थी। सीमा घर में छोटी थी। सबका प्यार पाती थी। इसी से अपनी बात कहने में झिझकती नहीं थी। स्कूल में अध्यापिका से अपनी समस्या सुलझा लेती थी। अध्यापिकाएँ भी उसकी पारिवारिक हालत और लगन को समझते हुए उसकी मदद करती रहती।
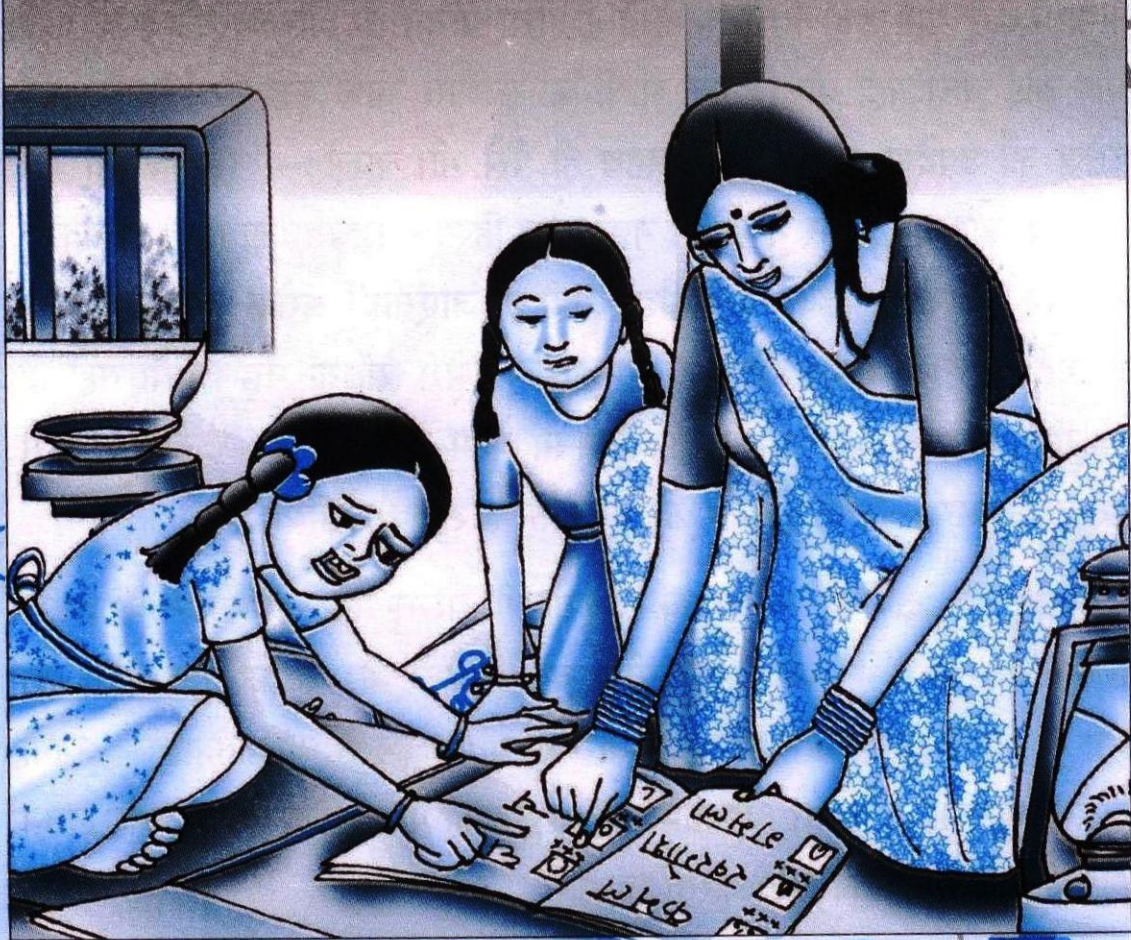
बस्ती में रहते हुए मोहन को धीरे-धीरे दस साल बीत गए। उसकी बड़ी लड़की सत्रह साल की हो गई। उसने बारहवीं पास कर ली और छोटी ने आठवीं। मोहन को भी अब दो-चार महीनों का बंधा काम मिल जाता था। उसकी कुछ ठेकेदारों से जान-पहचान हो गई थी। मेहनती होने के कारण वे उसे काम पर लगाए रखते।

गीता का अब आगे पढ़ने का मन नहीं था। सरोज ने उसे सिलाई का काम सिखवा दिया। वह खुद भी गीता की मदद करती। रानी भी उनका हाथ बँटाने आ जाती और थोड़े पैसे पा जाती। रानी अब सरोज की समझदारी पर भरोसा करने लगी थी। सरोज ने सीमा को और अच्छे स्कूल में दाखिल कर दिया।

पूरा परिवार दिन भर खूब मेहनत करता। घर में अब जरूरत भर का सब सामान आ गया था। मोहन ने आँगन पर टीन डालकर उसे बरामदे जैसा कर लिया। सामने की थोड़ी-सी जमीन साफ कर उसे बैठने लायक कर लिया। सरोज घर को खूब साफ-सुथरा रखती। उसे देखकर अड़ोस-पड़ोस के लोग भी अपने घरों को रंग-पोत कर सुन्दर रखने लगे। अब पूरी गली साफ-सुथरी दिखाई देती।

बस्ती में बहुत से आवारा लड़के घूमते रहते थे। सरोज किसी को भी अपने घर के पास न फटकने देती। लड़कियों को भी खूब समझाकर रखती। गाँव में लोग गली-मोहल्ले की शर्म करते थे। पर यहाँ गली-बस्ती का कोई लिहाज नहीं था। आए दिन लड़कियाँ गायब होती रहती थीं। शहर में हर दिन बड़े-बड़े घरों की पढ़ी-लिखी लड़कियाँ गायब हो जाती थीं। माता-पिता पछताते रह जाते थे कि उन्होंने लड़की को सँभालकर क्यों नहीं रखा? सरोज भूख, प्यास, गरीबी और

तंगी सब बर्दास्त कर सकती थी पर गलत राह नहीं। वह अपने गाँव के संस्कार नहीं छोड़ सकती थी। अपनी लड़कियों में भी उन्हें देखना चाहती थी।

सीमा ने इण्टर पास किया, तो बच्चों को ट्यूशन पढ़ाने लगी। साथ ही बी. ए. भी कर लिया। उसे एक स्कूल में अध्यापिका का पद मिल गया। वह एक दिन स्कूल में अर्द्ध-वार्षिक परीक्षा का परिणाम बाँट रही थी। वह अंक पत्र लेकर बैठी हुई थी। धीरे-धीरे अभिभावक इकट्ठा हो रहे थे। जो भी आता अपने बच्चों का नाम बोलता। सीमा उन्हें अंक-पत्र दे देती। तभी एक अधेड़ महिला एक बच्ची का हाथ पकड़े कमरे में आई। सीमा को वे जानी-पहचानी-सी लगीं। वे भी सीमा को गौर से देख रही थीं। तभी सीमा को ख्याल आया—"अरे, ये तो विमला आण्टी हैं। बचपन में वह कभी-कभी माँ के साथ उनके घर जाती थी। सीमा ने हाथ जोड़कर कहा—"आण्टी, नमस्ते।"

वे भी उसे पहचान गई। उनके मुँह से निकला—"ओह मैडम जी।" बात थोड़े व्यंग्य से कही गई थी। पर सच थी। कुछ देर बाद उन्होंने अपनी नाती का नाम बोला। सीमा ने उसका अंक-पत्र उन्हें दे दिया।

सरोज की मेहनत और समझदारी ने परिवार को उबार लिया। उसे अपना गाँव तो न मिल सका, पर घर का धंधा मिल गया। उसके सपने साकार हुए। वे भी उसकी मान्यताओं के अनुरूप।

डॉ० (श्रीमती) अपर्णा शर्मा

शिक्षा	:	एम०ए० (प्राचीन इतिहास व हिन्दी) बी०एड० एम०फिल० (इतिहास) पी-एच०डी० (इतिहास)
प्रकाशित रचनाएँ	:	**भारतीय संवतों का इतिहास (शोध ग्रंथ)** (एस०एस० पब्लिशर्स, दिल्ली, 1994) **खो गया गाँव (कहानी संग्रह)** (माउण्ट बुक्स, दिल्ली, 2010) **पढ़ो-बढ़ो (नवसाक्षरों के लिये)** (साहित्य संगम, इलाहाबाद, 2012) विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में लेख, पुस्तक समीक्षाएँ, कहानियाँ एवं कविताएँ प्रकाशित। लगभग 100 बाल-कविताएँ भी प्रकाशित। दूरदर्शन, आकाशवाणी एवं काव्य-गोष्ठियों में भागीदारी।

सम्पर्क : 'विश्रुत'
5, एम०आई०जी०, गोविन्दपुर,
निकट अपट्रान चौराहा,
इलाहाबाद-211 004 (उ०प्र०)
दूरभाष : +91-8005313626

ISBN 978-81-8097-168-6